श्री साईसच्चरित

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। अध्याय १० वा।।

।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीसरस्वतै नमः।। श्रीगुरुभ्यो नमः।। श्रीकुलदेवतायै नमः।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः।। श्रीसद्गुरुसाईनाथाय नमः।। जो सर्वलोकहितीं रत। ब्रह्मस्वरूपीं नित्यस्थित। स्मरा तयातें अविरत। प्रेमभरित अंतरें।।१।। जयाच्या स्मरणमात्रेंच। उकले जन्ममरणांचा पेंच। साधनांत साधन तें हेंच। नाहीं वेंच कपर्दिक।।२।। अल्प प्रयासें अनल्प फळ। अनायासें हाता ये सकळ। जोंवरी हा इंद्रियगण अविकल। तोंवरी पळपळ साधावें।।३।। इतर देव सारे मायिक। गुरुचि शाश्वत देव एक। चरणीं ठेवितां विश्वास देख। ''रेखेवर मेख मारी'' तो।।४।। जेथें सद्गुरुसेवा चोखट। संसाराचें समूळ तळपट। न्यायमीमांसादि घटपट। नलगे खटपट कांहींही।।५।। आधिभूत आणि आध्यात्मिक। तिसरें दुःख तें आधिदैविक। तरूनि जाती भक्त भाविक। होतां नाविक सद्गुरु।।६।। तरूं जातां लौकिक सागर। विश्वास लागे नावाडियावर। तोच तरावया भवसागर। निजगुरुवर ठेवावा।।७।। पाहोनि भक्तांची भाव-भक्ति। करितो करतलगत संवित्ति। 'आनंदलक्षण' मोक्षप्राप्ति। देतो हातीं लीलेनें।।८।। कयद्दर्शनें हृदयग्रंथी। तुटे हो सर्व विषयनिवृत्ति। संचित-क्रियमाण क्षया जाती। गाऊं चरितीं तयातें।।९।। अष्टमाध्यायीं जाहलें कथन। नरजन्माचें प्रयोजन। नवमीं भिक्षावृत्तीचें गहन। गुजवर्णन परिसिलें।।१०।। बायजाबाईची भाजीभाकर। खुशालचंदांचा समाचार। म्हाळसापती तात्यांचा शयनप्रकार। श्रवणसुखकर वानिला।।११।। आतां श्रोते दत्तचित्त। ऐका पुढील बाबांचें चरित। कैसे ते राहात कोठें निजत। कैसे विचरत अलक्ष्य।।१२।। केवढा लौकिक आयुर्दाय। हिंदूयवनां उभयां माय। वाघाबकऱ्यांच्या विश्वासा ठाय। प्रेमें निःसंशय विहरती।।१३।। झाली पोटापाण्याची कहाणी। आतां कैसी साईंची रहाणी। कोठें ते निजत कोण्या ठिकाणीं। सादर श्रवणीं श्रोते व्हा।।१४।। चौहाती लांब लांकडी फळी। रुंद एक वीतचि सगळी। झोपाळ्यावरी आढ्यास टांगली। चिंध्यांहीं बांधिली उभयाग्रीं।।१५।। ऐशा फळीवरी बाबा निजत। उशापायथ्या पणत्या जळत। केव्हां चढत केव्हां उतरत। अलक्ष्य गति तयांची।।१६।। मान वांकवूनि वरती बैसती। किंवा तिच्यावर निद्रिस्त असती। परि ते केव्हां चढती केव्हां उतरती। नकळे ते गति कवणाही।।१७।। ऐसी चिंध्यांनीं बांधिली फळी। वजन बाबांचें कैसें सांभाळी। महासिद्धि असतां जवळी। नांवाला फळी केवळ ती।।१८।। अतिसूक्ष्म कण डोळां खुपे। तेथें अणिमावंत सुखें लपे। माशी कीड मुंगी या रूपें। संचार सोपे बाबांचे।।१९।। अणिमा जयाचे घरची दासी। वेळ कां तयातें होतां माशी। वसेल जो अधांतरीं आकाशीं। मात त्या कायसी फळीची।।२०।। अणिमा-महिमा-लघिमा आदि। अष्टसिद्धि नवनिधी। बद्धांजली उभ्या जयाच्या संनिधी। फळी त्या नुसती निमित्ता।।२१।। कीड मुंगी सूकर श्वान। पशु पक्षी मनुष्य जाण। राजा रंक थोर सान। समसमान पाही जो।।२२।। दिसाया जरी शिरडीनिवासी। साडेतीन हाताची मिराशी। तरी ते सर्वहृदयवासी। पुण्यराशी महाराज।।२३।। अंतरीं निःसंग उदास। बाहेर लोकसंग्रहाचा सोस। अंतरीं जरी परम निराश। बाहेर पाश भक्तांचा।।२४।। अंतरीं अत्यंत निष्काम। बाह्यतः भक्तार्थ अति सकाम। अंतरीं निजशांतीचें धाम। बाह्यप्रकाम संतप्त।।२५।। अंतरीं परब्रह्मस्थिति। बाहेर दावी पैशाचवृत्ति। अंतरीं अद्वैतप्रीति। बाह्यतः गुंती विश्वाची।।२६।। कधीं पाही प्रेमभावें। कधीं पाषाण घेऊनि धावें। कधीं शिव्या-शापांतें द्यावें। कधीं कवटाळावें स्वानंदें।।२७।। कधीं शांत दांत उपरत। तितिक्षू सदा समाहित। आत्मस्थित आणि आत्मरत। प्रसन्नचित्त भक्तांसी।।२८।। एकासनीं नित्य लीन। नाहीं जयासी गमनागमन। सटका जयाचें दंडनिधान। तूष्णीवस्थान निश्चिंत।।२९।। नाहीं कीर्ति-वित्तेषणा। भिक्षाचर्य प्राणरक्षणा। करूनि ऐशिया योगारोहणा। कालक्रमणा करी जो।।३०।। प्रत्यक्ष संन्यासवेष यति। सटका तोचि दंड हातीं। ''अल्ला-मालिक'' वाक्यानुवृत्ती। भक्तप्रीति अखंड।।३१।। ऐशी साईंची सगुणमूर्ति। मनुष्यरूपें अभिव्यक्ति। पूर्वपुण्यार्जित ही संपत्ति। अवचित हातीं लाधली।।३२।। तयासी जे मनुष्य भाविती। मंदभाग्य ते मंदमति। विचित्र जयांची दैवगति। तयां हे प्राप्ती कैसेनी।।३३।। साई आत्मबोधाची खाण। साई आनंदविग्रहपूर्ण। धरा कास तयाची तूर्ण। भवार्णव संपूर्ण तराया।।३४।। खरेंच जें अपार अनंत। भरलें आब्रह्मस्तंबपर्यंत। ऐसें जें निरंतर अभिन्न अत्यंत। मूर्तिमंत तें बाबा।।३५।। कलियुगाचा कालप्रसार। चार लक्ष बत्तीस हजार। भरतां स्थूलमानें पांच हजार। झाला अवतार बाबांचा।।३६।। येथें श्रोते आशंका घेती। ठावी नसतां जन्मतिथि। काय आधारें केलें हें निश्चितीं। सादर चित्तीं परिसिजे।।३७।। आनिर्वाण कृतसंकल्पेंसीं। होऊनि शिरडीक्षेत्रनिवासी। कंठिलें साठ संवत्सरांसी। क्षेत्रसंन्यासी वृत्तीनें।।३८।। सोळा वर्षांचिया वयास। आरंभीं बाबा प्रकटले शिरडीस। तीन वर्षें ते समयास। करूनि वास होते ते।।३९।। तेथूनि मग जे कोठें सटकले। दूर निजामशाहींत आढळले। ते मग वऱ्हाडासमवेत आले। शिरडींत राहिले अक्षयी।।४०।। वीस वर्षें होतीं वयास। तेथूनि अखंड शिरडी-सहवास। तेथेंच साठ वर्षें वास। सर्वत्रांस हें ठावें।।४१।। शके अठराशें चाळीस। आश्विन शुद्ध दशमीस। विजयादशमीचे सुमुहूर्तास। बाबा निजवास पावले।।४२।। एवं ऐंशीचा आयुर्दाय। स्थूलमानाचा हा निश्चय। कीं शके सतराशें साठ होय। जन्मनिर्णय बाबांचा।।४३।।

काळाच्या माथां देणार पाय। ऐसिया महात्म्यांचा आयुर्दाय। करवेल कधीं निश्चित काय। अवघड हें कार्य साधाया।।४४।। महात्मे नित्य स्वस्थानीं स्थित। जन्म आणि मरणविरहित। दिनमणीस कैंचा उदयास्त। तो तंव अचल स्वस्थ सदा।।४५।। शके सोळाशें तीन सालीं। रामदासांची समाधी झाली। पुरीं दोनही न शतकें गेलीं। उदया आली ही मूर्ति।।४६।। भरतभूमि यवनाक्रांत। हिंदू नृप पादाक्रांत। भक्तिमार्ग झाला लुप्त। धर्मरहित जन झाले।।४७।। तैं रामदास झाले निर्माण। शिवरायातें हातीं धरून। केलें यवनांपासून राज्यरक्षण। गोब्राह्मण-संरक्षण।।४८।। पुरीं दोनही न शतकें गेलीं। पूर्वील घडी पुनश्च बिघडली। हिंदु-अविंधीं दुही पडली। ती मग तोडिली बाबांनीं।।४९।। राम आणि रहीम एक। यत्किंचितही नाहीं फरक। मग भक्तींच धरावी कां अटक। वर्तावें तुटक किमर्थ।।५०।। काय तुम्ही लेंकरें मूढ। बांधा हिंदु-अविंधांची सांगड। व्हा दृढ सुविचारारूढ। तरीच पैलथड पावाल।।५१।। वादावादी नाहीं बरी। नको कुणाची बरोबरी। व्हा नित्य निजहिताचे विचारी। रक्षील श्रीहरी तुम्हांला।।५२।। योग-यागतप-ज्ञान। हें सर्व हरिप्राप्तीचें साधन। असूनि हें जो हरिविहीन। व्यर्थ जनन तयाचें।।५३।। कोणी कांहीं केलिया अपकार। आपण न करणें प्रतिकार। करवेल तरी करा उपकार। उपदेश सार हा त्यांचा।।५४।। स्वार्थास तैसाचि परमार्थास। उपदेश हा हितावह बहुवस। उच्च नीच स्त्रीशूद्रांस। धोपट सकळांस हा मार्ग।।५५।। स्वप्नींच्या राज्याचें वैभव। जागें झालिया जैसें वाव। तैसाचि संसार केवळ माव। भावना ही तयाची।।५६।। देहादि सुखदुःखमिथ्यत्व। हेंचि जयाचें प्रपंचतत्त्व। निजानुसंधानें स्वप्न-भ्रमत्व। दवडोनि मुक्तत्व साधिलें।।५७।। पाहोनि शिष्याची बद्धता। अति कळवळा जयाचे चित्ता। कैसी लाधेल देहातीतता। हेचि चिंता अहर्निश।।५८।। अहंब्रह्माकारवृत्ति। अखंडानंदाची मूर्ति। निर्विकल्प चित्तस्थिति। येई निवृत्ति विसाविया।।५९।। घेऊनियां टाळ विणे। दारोदार भटकणें। आल्या गेल्या केविलवाणें। हात पसरणें ठावें ना।।६०।। बहुत ऐसे असती गुरु। शिष्य करिती धरधरूं। देती बळेंचि कानमंतरू। सिंतरूनि वित्तार्थ।।६१।। शिष्यास धर्माचें शिक्षण। स्वयें अधर्माचें आचरण। त्याचेनि कैसें भवतरण। जन्म-मरण चुकेल।।६२।। आपुल्या धार्मिकत्वाची ख्याति। व्हावी झेंडे फडकावे जगतीं। हें लवही न जयाचे चित्तीं। ऐसी ही मूर्ति साईंची।।६३।। देहाभिमाना न जेथें वसती। शिष्याठायीं अत्यंत प्रीति। सदैव जेथें हेचि प्रवृत्ति। ऐसी ही मूर्ति साईंची।।६४।। नियत आणि अनियत गुरु। असती गुरु दो प्रकारु। एकेकाचा कार्यनिर्धारु। स्पष्ट करूं श्रोतियां।।६५।। दैवी संपत्ति परिपक्व करणें। निर्मल होणें अंतःकरणें। एवढेंच अनियत गुरुचें देणें। मार्गीं लावणें मोक्षाच्या।।६६।। नियत गुरुशीं होतां सख्य। द्वैत जाऊनि होय ऐक्य। ''तत्त्वमसि'' महावाक्य। तयाची साक्ष तो दावी।।६७।। चराचरीं भरले गुरु। भक्तार्थ होती साकारु। सरतां अवतारकार्यभारु। निजावतारु संपविती।।६८।। या द्वितीय कोटींतील साई। चरित्र तयांचें वर्णूं मी कायी। जैसी तो मज बुद्धि देई। तैसेंचि होई लेखन हें।।६९।। लौकिकी विद्यांचे अनेक गुरु। स्वरूपीं स्थापी तोचि सद्गुरु। समर्थ तोचि जो दावी भवपारू। महिमा अगोचरू तयाचा।।७०।। जो जो जाई कराया दर्शन। तयाचें भूत भविष्य वर्तमान। साई न पुसतां करिती निवेदन। ऊण-खूण संपूर्ण।।७१।। ब्रह्मभावें भूतमात्र। अवलोकी जो सर्वत्र। देखे समसाम्यें अरि-मित्र। भेद तिळमात्र नेणे जो।।७२।। निरपेक्ष आणि समदर्शी। अपकारियांही अमृत वर्षी। समचित्त उत्कर्षापकर्षी। विकल्प ना स्पर्शी जयातें।।७३।। वर्ततां या नश्वर देहीं। देहगेहीं जो गुंतला नाहीं। दिसाया देही अंतरीं विदेही। तो येचि देहीं निर्मुक्त।।७४।। धन्य शिरडीचे जन। साईच जयांचें देवतार्चन। करितां अशन भोजन शयन। अखंड चिंतन साईंचें।।७५।। धन्य धन्य तयांची प्रेमळता। खळ्यांत परसांत कामें करितां। दळितां कांडितां डेरे घुसळितां। महिमा गातात बाबांचा।।७६।। आसनीं भोजनीं शयनीं। बाबांच्या नांवाची अक्षय स्मरणी। एका बाबांविण दुजा कोणी। देव ज्यांनीं नाठविला।।७७।। काय त्या बायांचा प्रेमा तरी। काय तयांचे प्रेमाची माधुरी। निर्मळ प्रेमचि कवन करी। विद्वत्ता न करी कवनास।।७८।। साधी सरळ भाषा खरी। विद्या नाहीं तिळभरी। त्यांतूनि जें कवित्व चमक मारी। मान चतुरीं डोलविजे।।७९।। खऱ्या प्रेमाचें आविर्भवन। तया नांव खरें कवन। तें या बायांच्या वाणीमधून। श्रोतीं पाहून घ्यावें कीं।।८०।। असेल साईबाबांची इच्छा। पूर्ण संग्रह लाधेल यांचा। पुरेल श्रोतियांची श्रवणेच्छा। अध्याय कवनांचा होईल।।८१।। असो निराकार भक्तकृपें। शिरडींत प्रकटले साईरूपें। देहाहंकार-विकारलोपें। भक्तिस्वरूपें ओळखिजे।।८२।। अथवा भक्तांचें पुण्य फळलें। तें प्राप्तकाल वसत मेळें। साईरूपें पूर्ण अंकुरलें। फळा आलें शिरडींत।।८३।। अनिर्वाच्या फुटली वाचा। अजन्म्यासी जन्म साचा। अमूर्ताच्या मूर्तीचा साचा। करुणरसाचा ओतीव।।८४।। यशवंत आणि श्रीमंत। वैराग्यशाली ज्ञानवंत। ऐश्वर्य औदार्यमंडित। षड्गुणान्वित मूर्ति हे।।८५।। विलक्षण बाबांचा निग्रह। स्वयें जरी अपरिग्रह। अमूर्त तरी धरिती विग्रह। भक्तानुग्रह-कारणें।।८६।। काय तयांचा कृपाभाव। घेती भक्तांचा जडवूनि भाव। नाहीं तरी तयांचा ठाव। कोण देव गिंवसिता।।८७।। वाग्देवता जें वदूं न धजे। श्रवणही जें परिसतां लाजे। ऐसे बोल भक्तकल्याणकाजें। साईमहाराजें वदावे।।८८।। जया शब्दांचा अनुवाद करणें। तयांहून बरें मुकेंच असणें। परि न बरवें कर्तव्या चुकणें। म्हणोनि वदणें प्राप्त झालें।।८९।। भक्तकणवा बाबांची वाणी। वदती झाली अति लीनपणीं। ''दासानुदास मी तुमचा ऋणी। निघालों दर्शनीं तुमचिया।।९०।। ही एक तुमचीच कृपा मोठी। झाली मज तुमचे पायांची भेटी। किडा मी तुमचे विष्ठेपोटीं। धन्य मी सृष्टीं तेणेनी''।।९१।। काय बाबांची ही लीनता। नम्रपणाची ही हौस चित्ता। काय ही उच्च निरभिमानता। शालीनता ही तैशीच।।९२।। वरील हे बाबांचे उद्गार। खरे म्हणूनि केले कीं सादर। कोणास वाटेल हा अनादर। तरी मी पदर पसरितों।।९३।। विटाळ झाला असेल वाचे। पापही टाळावया श्रवणाचें। आवर्तन करूं साईनामाचें। दोष सकळांचे जातील।।९४।। जन्मोजन्मींच्या आमुच्या तपा। फळ ती केवळ साईकृपा। तृषार्तासी जैसी प्रपा। तैसी अपार सुखदाती।।९५।। जिव्हाद्वारा रस चाखिती। ऐसे समस्तां जरी भासती। परि ते चाखिलें हें नेणती। रसस्फूर्ति न रसनेसी।।९६।। जयासी नाहीं विषयस्फूर्ति। कैसे तरी ते विषय सेविती। विषय जयांच्या इंद्रियां न शिवती। ते काय गुंतती विषयांत।।९७।। नयनद्वारें

अवलोकिती। पदार्थ जे जे येतील पुढती। परि ते अवलोकिले नेणती। स्फूर्ति देखती तेथ ना।।९८।। जैसी हनुमंताची गर्भकास। गोचर एक मातेस कीं रामास। मग तयाचे ब्रह्मचर्यास। तुलना कवणास करवेल।।९९।। जेथें माते न लिंगावलोकन। इतरांचें तैं काय कथन। बाबांचें ब्रह्मचर्यही परम कठीण। पूर्णपण तें अपूर्व।।१००।। कांसे कौपीन लंगोटी। लिंग अजागलस्तन-कोटी। केवळ मूत्रविसर्गपरिपाटी। अवयवां पोटीं अवयव।।१०१।। ऐसी बाबांची देहस्थिती। इंद्रियें जरी कर्मीं प्रवर्ततीं। तरी तयांस विषयस्फूर्ति। लव संवित्ती असेना।।१०२।। सत्त्व-रजत्तमादि गुणां। सवें इंद्रियें खिळिलीं ठाणा। जरी लौकिकीं कर्तेपणा। संगा कोणा नातळती।।१०३।। निःसंग चिन्मात्र आत्माराम। काम क्रोधां विश्रामधाम। बाबा सदैव निष्काम। अवाप्तकाम पूर्णत्वें।।१०४।। ऐसी तयांची मुक्तस्थिती। विषयही जयांस ब्रह्म होती। पुण्यपापाचिया परती। पूर्ण-निवृत्तिस्थान तें।।१०५।। [१]नानावल्लीनें ऊठ म्हणतां। गादी सोडून झाला जो परता। जया ठायीं देहाभिमानता। अथवा विषमता स्वप्नीं ना।।१०६।। इहलोकीं न प्राप्तव्य कांहीं। साध्य परलोकींही उरलें नाहीं। ऐसा हा केवळ लोकानुग्रही। संत ये महीं अवतरला।।१०७।। ऐसे हे संत करुणाघन। अवतारा येण्याचें प्रयोजन। परानुग्रहाविण ना आन। कृपाळू पूर्ण परहितीं।।१०८।। हृदय यांचें जैसें लोणी। अतीव मृदु म्हणती कोणी। परि संत द्रवतील पर-तापणीं। निजत्तापेंच पाझरणी लोणिया।।१०९।। कफनी ठिगळ्यांची जयाचें वसन। तरट जयाचें आसनास्तरण। वृत्तिशून्य जयाचें मन। रौप्यसिंहासन काय त्या।।११०।। पाहोनि भक्तभावाकडे। तयास जरी गमलें तें सांकडें। तरी ते लोटितां पाठीकडे। लक्षही तिकडे देती ना।।१११।। बाबा शिरडीसरोवरींचें कमळ। भक्त सेविती परिमळ। अभागी भेकांचे वांट्यास चिखल। सर्व काळ कालविती।।११२।। कोणा न सांगे आसन। प्राणापान वा इंद्रियदमन। मंत्र तंत्र वा यंत्र-भजन। फुंकणें कान तेंही ना।।११३।। लौकिकीं दिसती लोकाचारी। परि अंतरींची आणिक परी। अत्यंत दक्ष व्यवहारीं। न ये कुसरी दुजयातें।।११४।। भक्तार्थ धरिती आकार। तदर्थचि तयांचे विकार। हे संतांचे लौकिकाचार। जाणा साचार सकळिक।।११५।। साई महाराज संतनिधान। केवळ शुद्ध परमानंद-स्थान। तया माझें साष्टांग वंदन। निरभिमान निर्लेप।।११६।। महत्पुण्यपावन तें स्थान। जेथें महाराज आले चालून। गांठीं पूर्ण संचित असल्याविण। ऐसें निधान दुर्लभ।।११७।। ''शुद्ध बीजाचिया पोटीं। येतीं फळें रसाळ गोमटीं''। या प्रसिद्ध उक्तीची कसवटी। घेतली शिरडींत लोकांनीं।।११८।। तो ना हिंदू ना यवन। तया ना आश्रम ना वर्ण। परि करी समूळ निकृंतन। निःसंतान भवाचें।।११९।। अनंत अपार जैसें गगन। तैसें बाबांचें चरित्र गहन। तयांचें तें यथार्थ आकलन। तयांविण कोण करी।।१२०।। चित्ताचें काम चिंतन। क्षण न उगलें चिंतनाविण। विषय दिल्या त्या विषयचिंतन। गुरुचिंतन त्या गुरु दिधल्या।।१२१।। तरी सर्वेंद्रियांचे करूनि कान। ऐकिलेंत जें गुरुमहिमान। तें सहज स्मरण सहज भजन। सहज कीर्तन साईचें।।१२२।। पंचाग्निसाधन यज्ञयाग। मंत्रतंत्र-अष्टांगयोग। द्विजांसीच हे शक्य प्रयोग। काय उपयोग इतरांना।।१२३।। तैशा नव्हेत संतकथा। सकलां लाविती त्या सत्पथा। भवभयाची हरिती व्यथा। निज परमार्था प्रकटिती।।१२४।। संतकथा श्रवण मनन। परिशीलन वा निदिध्यासन। द्विज शूद्र वा स्त्रीजन। येणे पावन होतात।।१२५।। प्रेमचि नाहीं जयाचे ठायीं। ऐसा मानव होणेंचि नाहीं। कोणाचें कांहीं कोणाचें कांहीं। अधिष्ठान पाहीं आनान।।१२६।। कोणाचे प्रेमाची जागा संतती। कोणाची ती धनमानसंपत्ति। देह गेह लौकिक कीर्ति। विद्याप्राप्ति कोणाची।।१२७।। प्रेम जें विषयीं वाटतें। तें सर्व जैं एकवटतें। हरिचरणमुशींत जें आटतें। तैं तें प्रकटतें भक्तिरूपें।।१२८।। म्हणवूनि गेह प्रपंचाला सोपा। चित्त साईचरणीं समर्पा। मग तयाची होईल कृपा। उपाय सोपा हा एक।।१२९।। ऐसियाही अल्प साधनीं। महल्लाभ हो घडतो जनीं। तरी या श्रेयसंपादनीं। औदासीन्य कैसें पां।।१३०।। सहजीं श्रोतियां अंतरीं। आशंकेची उठेल लहरी। महल्लाभ अल्पोपायीं तरी। नादरिती कां बहुजन।।१३१।। आहे यासी एकचि कारण। लालसाही नुपजे भगवत्कृपेविण। तोच भगवंत जैं सुप्रसन्न। प्रकटे श्रवणलालसा।।१३२।। तरी साईस जाई शरण। कृपा करील नारायण। श्रवणलालसेचें होईल जनन। स्वल्पसाधन हातीं ये।।१३३।। गुरुकथेची सत्संगति। धरा उगवा संसारगुंती। यांतचि तुमचें सार्थक निश्चितीं। विकल्प चित्तीं न धरावा।।१३४।। सोडूनियां लाख चतुराई। स्मरा निरंतर ''साई साई''। ''बेडा पार'' होईल पाहीं। संदेह कांहीं न धरावा।।१३५।। हे नाहींत माझे बोल। असती साईमुखींचे सखोल। मानूं नका हो हे फोल। याचें तें तोल करूं नका।।१३६।। कुसंग तेथूनि सर्व खोटा। तो महादुःखांचा वसौटा। नकळतचि नेईल अव्हांटा। देईल फांटा सौख्याला।।१३७।। एका साईनाथावांचून। अथवा एका सद्गुरुविण। कुसंगाचें परिमार्जन। करील आन कवण कीं।।१३८।। कळवळ्याचें गुरुमुखांतून। निघालें जें गुरुवचन। करा करा भक्त हो जतन। कुसंगनिरसन होईल।।१३९।। सृष्टिजात डोळां भरतें। सौंदर्यलोलुप मन तैं रमतें। तीच दृष्टी जैं मागें परते। तैं तीच रते सत्संगीं।।१४०।। इतुकें सत्संगाचें महिमान। समूळ निर्दळी देहाभिमान। म्हणूनि सत्संगापरतें साधन। पाहतां आन असेना।।१४१।। धरावा नित्य सत्संग। इतर संग नित्य सव्यंग। सत्संग एकचि निर्व्यंग। अंग प्रत्यंग निर्मळ।।१४२।। सत्संग तोडी देहासक्ति। एवढी बलवत्तर तयाची शक्ति। एथ एकदां जडल्या भक्ति। संसारनिर्मुक्ति रोकडी।।१४३।। भाग्यें घडल्या सत्संग। सहज उपदेश यथासांग। तत्क्षणीं विरे कुसंग। रमतें निःसंग मन तेथें।।१४४।। व्हावया परमार्थी रिघाव। विषयविरक्ति एक उपाव। न धरितां सत्संगाची हाव। स्वरूपठाव लागेना।।१४५।। सुखापाठीं येतें दुःख। दुःखापाठींच येतें सुख। सुखासी जीव सदा सन्मुख। तोचि विन्मुख दुःखासी।।१४६।। व्हा सन्मुख वा विन्मुख। होणार होतें आवश्यक। या उभय भोगांचा मोचक। संगचि एक संतांचा।।१४७।। सत्संगें नासे देहाभिमान। सत्संगें तुटे जन्ममरण। सत्संगें भेटे चैतन्यघन। ग्रंथिविच्छेदन तात्काळ।।१४८।। पावावया उत्तम गति। पावन एक संतसंगति। शरण जातां अनन्यगति। निज विश्रांती आंदणी।।१४९।। नाहीं नाम नाहीं नमन। नाहीं भाव नाहीं भजन। तया कराया निजपरायण। संत महाजन अवतार।।१५०।। गंगा भागीरथी गोदा। कृष्णा वेण्णा कावेरी नर्मदा। याही वांच्छिती साधूंच्या पदा। येतील कदा स्नानार्थ।।१५१।। जगाचीं पातकें स्वयें क्षालिती। परि तयांची पापनिवृत्ति।

विना संतपदप्राप्ति। होईना ती कदापि।।१५२।। जन्मांतरींचें भाग्य उदेलें। महाराज साईंचे चरण जोडले। जन्ममरण ठायींच ठेलें। भवभय हरलें समस्त।।१५३।। आतां संत श्रोतेजन। केल्या श्रवणाचें करूं मनन। विसांवा घेऊं आपण। पुढील निरूपण पुढाकार।।१५४।। हेमाड साईंस शरण। मी तों तयांच्या पायींची वहाण। करीत राहीन कथानिरूपण। होईन सुखसंपन्न तितुकेनी।।१५५।। काय तें मनोहर गोमटें ध्यान। मशिदीचे कडेवर राहून। करीत एकेकां उदीप्रदान। भक्त-कल्याणहेतूनें।।१५६।। संसार मिथ्या जयाचें ज्ञान। ब्रह्मानंदीं अखंड लीन। मन सदैव उफललें सुमन। साष्टांग नमन तयातें।।१५७।। डोळां जैं घाली ज्ञानांजन। ठायींच पाडी निजनिधान। ऐसें जया साईचें महिमान। साष्टांग वंदन तयातें।।१५८।। पुढील अध्याय याहूनि बरा। अंतरीं शिरतां श्रवणद्वारा। करील पुनीत हृदयमंदिरा। खळ मळ सारा दवडील।।१५९।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। श्रीसाईसमर्थमहिमानं नाम दशमोऽध्यायः संपूर्णः।।

।।श्रीसद्‌गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।

१. नानावल्ली म्हणून एक पिशाच वृत्तीने राहणारे धष्टपुष्ट गृहस्थ बरीच मुदत शिरडीत राहिले होते. त्यांनी तेथे असल्या मुदतीत अतोनात स्वैरवर्तन केले. श्रीसाईबाबांच्या दरबारचा बंदोबस्त ठेवण्याकडे त्यांचे फार लक्ष असे. लहर आल्यास कोणास कवटाळीत, तर कोणाच्या थोबाडीतही भडकावीत. कधी सर्वांग चिखलात माखवून, कधी वानरवेष घेऊन व गावातील पोरांस वानरवेष देऊन सभामंडपात येत व खूप गडबड करीत असत. श्रीसमर्थांवर त्यांचे व त्यांच्यावर श्रीसमर्थांचे फार प्रेम असे. एकदा लहरीत येऊन साईबाबांचा हात धरून त्यांना यांनी गादीवरून उठविले व एक मिनिटभर आपण त्यांच्या गादीवर बसले आणि लगेच त्यांना अत्यादरपूर्वक गादीवर बसवून त्यांना साष्टांग नमस्कार घातला. हे गृहस्थ साईबाबांस 'काका' म्हणून हाक मारीत व साईबाबांनी देह ठेवल्यापासून त्यांनी जे दुखणे घेतले त्या दुखण्याने साईबाबांच्या देहावसनाच्या तेराव्याच दिवशी त्यांनी ''काका.... काका'' म्हणून आपला देह ठेवला. त्यांचे स्मारक म्हणून शिरडीस त्यांच्या देहावर समाधी बांधण्यात आलेली आहे.

२. परक्यास झालेल्या तापाने.